THE HINDU

Date: 06-09-25

The Chancellors

Universities need to be headed by distinguished academicians

Editorial

The recent submission by Kerala Governor Rajendra Vishwanath Arlekar to the Supreme Court of India, contending that the Chief Minister of Kerala has no role in the appointment of the Vice-Chancellors (V-C) of A.P.J. Abdul Kalam Technological University and Digital University Kerala, is another instance of how recent Governors are the political and ideological adversaries of an elected State government — as seen in Kerala, Tamil Nadu, and, to some extent, West Bengal. Mr. Arlekar had appealed against an attempt by the Court to break the long-standing impasse over V-C appointments to these universities by guiding the creation of search-cum-selection committees and laying down rules. The Governor submitted that the 2018 UGC rules for search-cum-selection committees mandate persons of eminence in higher education and must not be connected in any manner with the university or its colleges. Thus, according to his submission, the Chief Minister, as someone intimately connected to all such institutions in the State, had no role. The draft 2025 UGC Regulations take this further by divesting State governments of a role in appointing V-Cs and bringing it under the Chancellor's purview. While the Court will rule on the merit of Mr. Arlekar's position, it is worth noting that Governors in States ruled by the BJP or its allies do not seem to have such problems with the governments they nominally head.

Governors were originally instruments of colonial power and were retained by independent India. From the very beginning, however, they have often acted as political agents of the ruling party at the Centre. Over time, central and State legislation defined and restricted the discretionary powers of Governors which were vested in them by the Constitution. After Independence, State governments retained the colonial-era practice of having Governors as heads of universities — to continue the stated intention of ensuring independent higher education as well as to have a "father figure" or a wise elder. The Acts passed by State legislatures, such as those for A.P.J. Abdul Kalam University, specifically define who the Chancellor will be. The Governor owes his or her position as Chancellor of a university to the respective State government. Even as the Court circumscribes the gubernatorial powers regarding the signing of Bills into law, State governments are acting decisively against having Governors as Chancellors of State universities — one of the few other domains where Governors have a strong say. Punjab and West Bengal, for instance, have passed a law making the Chief Minister the Chancellor. University heads need to be hands-on, distinguished academicians with a broader profile and vision, and strong managerial skills, rather than political appointees, State or Union.

दैनिक भास्कर

Date: 06-09-25

इन जीएसटी सुधारों का सकारात्मक प्रभाव होगा

संपादकीय

जीएसटी के चार की जगह दो स्लैब्स, दरें घटाना और रोटी (5%) और पराठे (18%) के फर्क को मिटाकर शून्य करना, निजी स्वास्थ्य व जीवन बीमा पर टैक्स हटाना लेकिन तम्बाकू उत्पाद, कार्बोनेटेड या कैफीन पेय आदि पर 28 की जगह 40% टैक्स लगाना सरकार की सकारात्मक सोच को बताता है। केंद्र व राज्यों के प्रतिनिधियों वाली लगभग 10.30 घंटे चली जीएसटी कौंसिल की बैठक के बाद इस फैसले पर मुहर लगी। वित्तमंत्री ने कहा भी कि इस बदलाव से होने वाले राजस्व ह्रास को घाटा कहने की जगह रेवेन्यू इम्प्लिकेशन (राजस्व पर असर) कहा जाना चाहिए। सरकार का मानना है कि कंज्यूमर आइटम्स सस्ते होने से खरीदने की मानसिकता बनेगी और एक क्रमिक प्रतिक्रिया में मैन्युफैक्चरिंग का विस्तार होगा, जिससे नौकरियां बढ़ेंगी और जॉब पाने वाला उपभोग में खर्च करेगा। चार स्लैब्स वाले जीएसटी को लेकर उद्योग और वाणिज्यिक जगत में सालों से विरोध था। सरकार की बैठकों में उद्यमी उदाहरण देते थे कि रेस्तरां में अगर मक्खन और ब्रेड अलग-अलग लिया तो जीएसटी कम, लेकिन मक्खन लगा ब्रेड लिया तो ज्यादा। इससे व्यापारियों को जटिलता का सामना करना पड़ता था और भ्रष्टाचार को भी बढ़ावा मिलता था। इन जीएसटी सुधारों का मैन्युफैक्चरिंग, ट्रेड और उपभोग पर सकारात्मक प्रभाव होगा, जो आज जरूरी है ।

Date: 06-09-25

भारत को अधिक से अधिक ग्रेड-ए शहरों की जरूरत है

चेतन भगत, (अंग्रेजी के उपन्यासकार)

गुरुग्राम का उदय इसलिए हुआ था, क्योंकि नई दिल्ली अपनी रियल एस्टेट नीति में विफल रही थी। नई दिल्ली दुनिया के उन इने-गिने शहरों में से होगा, जिसने दशकों तक संगठित निजी रियल एस्टेट विकास को रोके रखा। उसकी भूमि और आवास का ज्यादातर कामकाज डीडीए के पास था, जो फ्लैट, शॉपिंग सेंटर और कॉमर्शियल कॉम्प्लेक्स बनाता था। 1990 और 2000 के दशक में उदारीकृत और आईटी की प्रधानता वाले भारत की मांग को पूरा करने के लिए ये डीडीए परियोजनाएं न तो पर्याप्त थीं, और ना ही गुणवत्तापूर्ण। भूमि एवं रियल एस्टेट की अप्रासंगिक नीति के कारण दिल्ली उन लोगों के लिए व्यावहारिक नहीं रही, जो ग्रेड-ए

ऑफिस या बेहतर नियोजित व उच्च गुणवत्ता वाले आवासों की तलाश में थे। इसी कमी के चलते यूपी में नोएडा और हरियाणा में गुरुग्राम का उदय हुआ। ये दोनों ही दिल्ली की सीमाओं से सटे हैं और दिल्ली में पूरी नहीं होने वाली जरूरतों को पूरा कर रहे हैं। गुरुग्राम और नोएडा- इन दोनों ने ही विकास किया, लेकिन गुरुग्राम आगे निकल गया। इसका बहुत अधिक श्रेय डीएलएफ डेवलपर को जाता है, जिसके जैसी योजना और नजरिया भारत में शायद ही कहीं देखने को मिले। गुरुग्राम के निर्माण ए-ग्रेड के थे, कुछ ऐसा जो डीडीए फ्लैट्स से भरी दिल्ली ने कभी नहीं देखा था। दिल्ली के धनाढ्य महज एक 'कोठी' (छोटा बंगला) की उम्मीद कर सकते थे, लेकिन गुरुग्राम ने गोल्फ कोर्स, स्विमिंग पूल, हाई-स्पीड लिफ्ट और सेंट्रल एयर-कंडीशनिंग जैसी सुविधाएं दी।

शुरुआत में लोग गुरुग्राम में केवल रहने के लिए आए, लेकिन काम के लिए दिल्ली जाते थे। फिर आया गेम-चेंजर : ग्रेड-ए ऑफिस स्पेसेस- जो न केवल उत्तर भारत, बल्कि शायद समूचे भारत ने कभी नहीं देखे थे। मुंबई के विपरीत दिल्ली में नरीमन पॉइंट जैसा कुछ नहीं था। अपने कुछ पुराने ऑफिस ब्लॉकों के साथ महज कनॉट प्लेस ही दिल्ली में सब कुछ था। दूसरी ओर, गुरुग्राम में चमचमाते ऑफिस, मॉल और रेस्तरां थे। इस खासियत के चलते यह बहुराष्ट्रीय कंपनियों, स्टार्टअप्स, कॉल सेंटर, मीडिया हाउस और चहलपहल भरी व्यावसायिक गतिविधियों का ठिकाना बना। नौकरियां और पैसा आए। मांग आसमान छूने लगी। जल्द ही दिल्ली के लोग भी कामकाज के लिए गुरुग्राम आने लगे।

यह तब की बात है जब दिल्ली-गुरुग्राम हाईवे भी नहीं था। ट्रैफिक जाम हर दिन की आम बात थी। लेकिन हाईवे शुरू होने के बाद भी गुरुग्राम का विस्तार इतना विस्फोटक था कि राजमार्ग पर भी अब हमेशा जाम ही रहता है। और अगर बारिश हो तो अराजकता छा जाती है। पिछले हफ्ते ही सोशल मीडिया पर गुरुग्राम में मीलों तक फैले जाम के ड्रोन फुटेज की बाढ़ आ गई थी। कुछ यात्रियों ने छह घंटे तक फंसे रहने की शिकायत की। उन इलाकों तक की सड़कें डूब गई थीं, जहां बेहद महंगे अपार्टमेंटों में वरिष्ठ मैनेजर और बिजनेस लीडर रहते हैं। भारत के सम्पदा-सृजन का प्रतीक शहर अचानक बदहाल दिखने लगा। यह भारतीयों को याद दिलाता है कि तुम विश्वस्तरीय जीवन का सपना देखने की हिमाकत मत करो, क्योंकि जल्द ही हकीकत से तुम्हारा सामना होगा। गुरुग्राम की समस्या ये है कि वह भारत के मानकों से बहुत बेहतर है। भारत में अच्छी रिहाइश, ऑफिस, नौकरियों और मनोरंजन सुविधा वाले सुनियोजित शहरों की इतनी कमी है कि जब एक गुरुग्राम उभरता है तो पूरा देश उस पर टूट पड़ता है। यह शायद भारत के उन चार या पांच शहरों में से एक है, जहां 2 लाख रुपए प्रतिमाह से अधिक वेतन वाली नौकरियां बहुतायत में हैं। इन चार-पांच महानगरों से बाहर कदम रखते ही कमाई और ए-ग्रेड की इमारतें तेजी से घट जाती हैं। इसमें छोटे कस्बों की बेरोजगारी को भी जोड़ दें, जिसके कारण युवा बड़े शहरों का रुख कर रहे हैं- तो आप गुरुग्राम की ओर खिंचे चले आएंगे।

यदि दिल्ली ने 1990 के दशक में एक समझदारी भरी रियल एस्टेट नीति बनाई होती तो गुरुग्राम कभी बनता ही नहीं। अगर भारत में शहरों को मास्टर प्लान के अनुसार सुनियोजित किया जाता तो कंपनियों को गुरुग्राम, बेंगलुरु, मुम्बई, हैदराबाद, चेन्नई से बाहर निकलने के लिए प्रोत्साहित किया जाता। तब इन महानगरों के हालात इतने भयावह नहीं होते। आखिर सौ शीर्ष भारतीय कंपनियों में ऐसी कितनी हैं, जिनके मुख्यालय इन पांच शहरों से बाहर हैं? फिर इसकी तुलना अमेरिका से करें, जहां कॉर्पोरेट मुख्यालय दर्जनों शहरों में फैले हुए हैं।

दैनिक जागरण

Date: 06-09-25

कौशल वाली शिक्षा ही बनाएगी देश को अग्रणी

राजीव शुक्ला, (लेखक कांग्रेस सांसद एवं पूर्व केंद्रीय मंत्री हैं)

भारत विश्व की सबसे युवा जनसंख्या वाला देश है, जहां 65 प्रतिशत से अधिक नागरिक 35 वर्ष से कम आयु के हैं। यह जनसांख्यिकीय लाभांश भारत की आर्थिक प्रगति को नई ऊंचाइयों तक ले जाने की क्षमता रखता है। हमारे युवा तेज तर्रार हैं, लेकिन उनका आत्मविश्वास अक्सर नौकरी के मैदान में ठहर जाता है, क्योंकि उन्हें व्यावहारिक कौशल की कमी महसूस होती है। असल सवाल यही है कि क्या केवल डिग्री लेकर हम इस अवसर को भुना पाएंगे या फिर हमें दक्षता और व्यावसायिक योग्यता की ओर गंभीरता से बढ़ना होगा। दुर्भाग्य से 2025 तक की तस्वीर बताती है कि देश के केवल सात प्रतिशत युवा ही औपचारिक कौशल प्रशिक्षण प्राप्त कर पाते हैं। जबकि जर्मनी, जापान और दक्षिण कोरिया जैसे देशों में यह अनुपात 70 से 90 प्रतिशत तक पहुंच चुका है। यही वजह है कि वहां के युवाओं की रोजगार क्षमता और उत्पादकता भारत की तुलना में कहीं अधिक है। यह अंतर भारत के लिए गंभीर संकट का संकेत है। डिग्रियों से लैस युवाओं की बेरोजगारी इस खाई को साफ दिखाती है।

हमारे विश्वविद्यालयों से हर साल लाखों छात्र निकलते हैं, लेकिन उनमें से बड़ी संख्या ऐसी होती है जिनके पास न तो उद्योगों की अपेक्षाओं के अनुरूप तकनीकी दक्षता होती है और न ही आधुनिक कार्यस्थल के अनुकूल साफ स्किल्स। राष्ट्रीय कौशल विकास निगम और श्रम मंत्रालय के अनुसार लगभग 40 प्रतिशत स्नातक युवाओं के पास रोजगार पाने के लिए आवश्यक व्यावहारिक कौशल ही नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि डिग्री और नौकरी के बीच जो सेतु होना चाहिए था, उसे हमारी शिक्षा और प्रशिक्षण व्यवस्था ने खड़ा ही नहीं किया। 2024 में एक औद्योगिक शहर में किए गए सर्वेक्षण ने इस तस्वीर को और स्पष्ट कर दिया। 10 हजार युवाओं में से केवल 12 प्रतिशत ने औपचारिक प्रशिक्षण लिया था और उनमें से भी अधिकांश को उम्मीद के अनुसार रोजगार नहीं मिला। यह केवल बेरोजगारी की कहानी नहीं है, बल्कि प्रशिक्षण तंत्र की कमजोरी का आईना है। हमारे औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान प्रशिक्षकों की भारी कमी से जूझ रहे हैं। मशीनें पुरानी हैं, पाठ्यक्रम दशकों पुराने हैं और प्रशिक्षण पद्धति में न तो आधुनिक तकनीकी संसाधनों का इस्तेमाल है और न ही उद्योगों की मांग का ध्यान रखा जाता है। ऊपर से समाज में व्यावसायिक शिक्षा को अब भी 'दूसरे दर्जे' की पढ़ाई माना जाता है। परिणाम यह होता है कि डिग्रीधारी छात्र भी नौकरी की कसौटी पर खरे नहीं उतर पाते। सरकार ने इस संकट को देखते हुए प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना और राष्ट्रीय कौशल विकास मिशन जैसी पहल की हैं। कागज पर ये योजनाएं बहुत आकर्षक दिखती हैं। इनका मकसद युवाओं को उद्योग-अनुकूल प्रशिक्षण देना और स्वरोजगार के लिए तैयार करना है। हालांकि जमीनी हकीकत कुछ और ही कहानी कहती है।

विभिन्न रिपोर्टों के अनुसार लगभग 30 प्रतिशत प्रशिक्षित युवाओं को प्रशिक्षण के बाद भी रोजगार नहीं मिला और जिन्हें मिला वे अधिकतर अस्थायी और कम वेतन वाली नौकरियों में सिमट गए। यह इस बात का सुबूत है कि केवल प्रमाणपत्र थमा देना समाधान नहीं है। प्रशिक्षण की गुणवत्ता और उसका उद्योगों से जुड़ाव ही असली सफलता तय करेगा। ग्रामीण भारत में यह समस्या और गहरी है। अधिकांश योजनाएं शहरी और अर्ध-शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित हैं। गांवों में प्रशिक्षण केंद्रों की संख्या बहुत कम है। डिजिटल प्रशिक्षण कार्यक्रम इंटरनेट कनेक्टिविटी की कमी और तकनीकी साक्षरता की खाई के कारण पूरी तरह कारगर नहीं हो पाते। गांव का युवा चाहकर भी शहर जाकर प्रशिक्षण नहीं ले पाता, क्योंकि वहां पहुंचने के लिए न साधन होते हैं न संसाधन। इस असमानता को मिटाए बिना भारत का कौशल संकट दूर नहीं होगा। दुनिया के सफल अनुभव बताते हैं कि यह स्थिति बदली जा सकती है। जर्मनी का डुअल एजुकेशन सिस्टम इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। वहां छात्र पढ़ाई के साथ-साथ उद्योगों में व्यावहारिक प्रशिक्षण लेते हैं।

जापान की अप्रेंटिसशिप प्रणाली और चीन के ग्रामीण प्रशिक्षण केंद्रों ने भी यह साबित किया है कि यदि उद्योग और शिक्षा मिलकर चलें तो कौशल विकास स्वतः सशक्त हो सकता है। इन देशों की सफलता का आधार यही रहा है कि उन्होंने युवाओं को केवल किताबों तक सीमित नहीं किया, बल्कि उन्हें वास्तविक काम का अनुभव दिलाया। भारत को भी इसी राह पर चलना होगा। समय की आवश्यकता है कि कौशल योजनाओं को एक केंद्रीकृत मंच पर लाना होगा, ताकि पारदर्शिता और समन्वय सुनिश्चित हो। प्रशिक्षकों को मानकीकृत प्रशिक्षण दिया जाए और उन्हें समय-समय पर अद्यतन किया जाए। पाठ्यक्रमों को उद्योग की जरूरत के अनुसार बदलना होगा और ग्रामीण क्षेत्रों को प्रशिक्षण केंद्रों के साथ जोड़ना होगा। मोबाइल प्रशिक्षण वैन, डिजिटल क्लास और स्थानीय उद्योगों के साथ साझेदारी इस दिशा में अहम कदम हो सकते हैं। साथ ही उद्योगों को भी पाठ्यक्रम निर्माण और इंटर्नशिप अवसर उपलब्ध कराने में सक्रिय भागीदार बनना होगा। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कौशल विकास को केवल नौकरी पाने तक सीमित न रखा जाए। आजीवन सीखने की संस्कृति युवाओं में विकसित करनी होगी। तकनीक इतनी तेजी से बदल रही है कि एक बार सीखा गया कौशल कुछ ही वर्षों में अप्रासंगिक हो जाता है। ऐसे में युवाओं को लगातार नए कौशल सीखते रहना होगा। आनलाइन प्लेटफार्म और माइक्रो-कोर्स इसमें सहायक बन सकते हैं।

भारत की युवा शक्ति तभी वास्तविक संपत्ति बनेगी, जब उसे केवल डिग्रियां नहीं, बल्कि दक्षता भी दी जाएगी। बेरोजगारी का सबसे बड़ा कारण सिर्फ नौकरियों की कमी नहीं, बल्कि युवाओं में उपयुक्त कौशल का अभाव है। यदि नीति-निर्माण और क्रियान्वयन में सुधार किए जाएं, प्रशिक्षण की गुणवत्ता बढ़ाई जाए और उद्योग-शिक्षा के बीच पुल बनाया जाए, तो भारत न केवल अपने युवाओं के लिए रोजगार सुनिश्चित कर सकेगा, बल्कि वैश्विक प्रतिस्पर्धा में अग्रणी भी बन सकेगा।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 06-09-25

मानसून और शहरी नियोजन

संपादकीय

देश की राजधानी नई दिल्ली, मिलेनियम सिटी गुरुग्राम, वित्तीय राजधानी मुंबई, सिलिकन सिटी बेंगलूरु और उभरते औद्योगिक केंद्र चेन्नई में एक बात साझा है। बीते दशक में हर मॉनसून में देश के ये महानगर जो अहम औद्योगिक गतिविधियों के केंद्र भी हैं, पूरी तरह ठप हो जाते हैं। हाल में आई बाढ़ में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र और मुंबई के अनेक हिस्सों में बाढ़ और लोगों के विस्थापन के जो दृश्य नजर आए वे इसी प्रक्रिया का हिस्सा हैं। नगर निगम के अधिकारीगण मौसम की इन अतियों के कारण बड़े पैमाने पर हो रही इस आपदा, लोगों की मौतों और आर्थिक क्षति, सभी से अवगत हैं। परंतु इसका हल उनके पास भी नहीं नजर आ रहा है।

पहली नजर में बढ़ता शहरीकरण इसके लिए दोषी नजर आता है। सच तो यह है कि यह शहरीकरण दुनिया भर में आर्थिक वृद्धि और विकास का अपरिहार्य परिणाम है। भारत भी अलग नहीं है। असली चुनौती है यह सुनिश्चित करना कि बढ़ते शहरी केंद्रों का सही ढंग से नियोजन किया जाए और उनके रखरखाव तथा उन्हें टिकाऊ बनाने के लिए सही वित्तीय मॉडल के साथ-साथ उचित संतुलन कायम किया जाए। भारत के अधिकांश हिस्सों में ऐसा नहीं हो पाया है। खासतौर पर जहां निर्माण लॉबी का प्रभाव नगरीय निकायों पर लगातार बढ़ता जा रहा है। वह भी तब जब ये संस्थाएं वित्तीय संकट से जूझ रही हैं। इसका परिणाम यह है कि पेड़ों को मनमाने ढंग से काटा जा रहा है, या उनकी जड़ों को दमघोंटू कंक्रीट संरचनाओं में बंद कर दिया जाता है। हरियाली लगातार नष्ट हो रही है, और जलाशयों को बिना स्थानीय जल-प्रणाली की समझ के कंक्रीट से ढक दिया जाता है, जबकि मूलभूत जल निकासी प्रणाली और बाढ़ नियंत्रण ढांचे की कमी साफ तौर पर दिखाई देती है। यहां तक कि मानसून से पहले नालियों की सफाई जैसे सरल कदम भी नगर प्रशासन की समझ से बाहर प्रतीत होते हैं।

जलवायु परिवर्तन और अत्यधिक गर्मी के कारण ये समस्याएं हर साल और गंभीर हो रही हैं तथा इनका तत्काल हल तलाश करना जरूरी है। अध्ययन दिखाते हैं कि खासकर उत्तर-मध्य भारत में मॉनसून का असर हालिया दशकों में काफी अधिक रहा है। मॉनसून बहुत असंयमित भी हुआ है। उदाहरण के लिए इस वर्ष मॉनसून जल्दी आ गया। कुछ राज्यों में यह दो सप्ताह से लेकर 18 दिन तक पहले आ गया।

इसके अलावा इसने कई पश्चिमी विक्षोभों को और मजबूत किया जिससे भारी बारिश हुई। जम्मू-कश्मीर से लेकर हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड तक भारी बारिश के कारण क्षति के शिकार हुए। डाउन टु अर्थ पत्रिका के मुताबिक इस वर्ष अगस्त के अंत तक मॉनसून ने 15 पश्चिमी विक्षोभ झेले। इससे हिमालय के निचले इलाके में, जहां अनियोजित निर्माण कार्य हुए हैं, वहां पहाड़ धसकने और वृक्षों के गिरने की तमाम घटनाओं से भारी नुकसान हुआ। इस वर्ष हरसिल घाटी के पास भूस्खलन से हुई मृत्यु और विनाश की श्रृंखला का मुख्य कारण यह था कि वहां के नाजुक भू-भाग पर आवासीय भवनों और होटलों आदि का निर्माण किया गया। यह निर्माण ऐसी जगह हुआ जहां कायदे से नहीं होना चाहिए था।

भविष्य की बात करें तो भारतीय शहरों को मॉनसून की दृष्टि से बेहतर तैयारी की जरूरत है। पहली बात तो ये कि हमारे शहर मौसमी बारिश के लिए भी तैयार नहीं हैं। शहरी जल निकासी व्यवस्था मॉनसून की विस्तारित अवधि से निपटने के लिए तैयार नहीं है। इसके अलावा अब कम समय में भी तेज बारिश की घटनाएं हो रही हैं जिनसे निपटना मुश्किल है। अगस्त में सामान्य से 5 फीसदी अधिक बारिश के बाद भारत के मौसम विभाग ने अनुमान जताया है कि सितंबर में भी औसत से अधिक बारिश होगी। सितंबर के पहले हफ्ते में ही दिल्ली और गुरुग्राम पानी में डूब गए। यह विकसित भारत के लिए अच्छा उदाहरण नहीं है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 06-09-25

दागदार मंत्री

संपादकीय

यह सूचना न केवल चौंकाती है, हमें सोचने पर भी विवश करती है कि भारत के लगभग 47 प्रतिशत मंत्रियों के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं। आपराधिक मामलों में भी हत्या, अपहरण और महिलाओं के खिलाफ अपराध के गंभीर मामले शामिल हैं। 'एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स' अर्थात एडीआर का यह अध्ययन खास मायने रखता है। अभी हाल ही में तीन विधेयक संसद में पेश किए गए थे, ताकि गंभीर आपराधिक मामलों में अगर किसी प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री या मंत्री को 30 दिन भी जेल में रहना पड़े, तो उसे स्वत: पदमुक्त मान लिया जाए। इस संशोधन का अनेक दलों और नेताओं ने विरोध किया है। आशंका जताई गई कि अगर ये कानून बन गए, तो उनका दुरुपयोग होगा, जिससे विपक्षियों को निशाना बनाया जाएगा। जिस देश में 47 प्रतिशत के करीब मंत्रियों के दामन पर आपराधिक दाग हों, वहां कड़े कानून के विरोध को समझा जा सकता है। जैसी चालू परिपाटी रही है, उसमें किसी भी कानून के दुरुपयोग को पूरी तरह रोका नहीं जा सकता। संभव है कि कुछ मंत्रियों के खिलाफ मामले दर्ज करने में कानून का दुरुपयोग हुआ हो, फिर भी समग्रता में चिंता वाजिब है।

गौर करने की बात है कि 27 राज्यों, तीन केंद्रशासित प्रदेशों और केंद्रीय मंत्रिपरिषद के कुल 643 मंत्रियों के स्व-शपथ पत्रों की जांच की गई है। चुनाव सुधार के लिए काम करने वाली प्रसिद्ध संस्था एडीआर ने पाया है कि 302 मंत्रियों के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं। इनमें से 174 पर गंभीर आपराधिक मामले हैं। भाजपा के 40 प्रतिशत मंत्रियों के खिलाफ, तो कांग्रेस के 74 प्रतिशत मंत्रियों पर आपराधिक मामले दर्ज हैं। तमिलनाडु में सत्तारूढ़ द्रमुक के लगभग 87 प्रतिशत मंत्रियों पर आपराधिक आरोप हैं। वास्तव में, देश में कोई ऐसी पार्टी नहीं है, जिसमें आपराधिक दाग वाले नेता न हों। हालांकि, यह दाग तेलुगु देशम पार्टी पर सबसे गाढ़ा है, उसके 96 प्रतिशत मंत्रियों के खिलाफ आपराधिक मामले बताते हैं कि कथित साफ छवि वाले राजनीतिक दल भी अपने नेताओं पर लगने वाले दाग को गंभीरता से नहीं लेते हैं। पहले यह उम्मीद जताई गई थी कि राजनीतिक दल स्वयं दागदार नेताओं को किनारे कर देंगे, मगर इसमें कामयाबी नहीं मिल रही है। यह उम्मीद भी रहती है कि राजनेताओं के मामले में जल्दी सुनवाई और फैसला होना चाहिए, लेकिन इसमें भी सफलता नहीं मिल पा रही है। ऐसे में, न तो हम दागदार विधायकों, सांसदों से बच सकते हैं और न दागदार मंत्रियों से।

जैसे हालात हैं, उसमें यह आश्चर्य की बात नहीं कि 72 केंद्रीय मंत्रियों में से 29 अर्थात 40 प्रतिशत ने खुद पर आपराधिक मामले को स्वीकार किया है। वैसे, बहुत निराश होने की भी जरूरत नहीं है। हरियाणा, जम्मू-कश्मीर, नगालैंड और उत्तराखंड के मंत्रियों ने अपने खिलाफ कोई आपराधिक मामला दर्ज न होने की सूचना दी है। बहरहाल, एडीआर ने मंत्रियों की औसत संपत्ति के भी दिलचस्प आंकड़े पेश किए हैं। अपने देश में मंत्रियों की औसत संपत्ति 37.21 करोड़ रुपये है। दर्ज करने वाली बात है कि 30 विधानसभाओं में से 11 में अरबपति मंत्री हैं। कर्नाटक में सबसे ज्यादा आठ अरबपति मंत्री हैं। इसमें कोई दोराय नहीं कि देश में अमीर नेताओं की तादाद समय के साथ बढ़ती चली जाएगी। जहां अरबपति बढ़ रहे हैं, वहीं दो या

तीन लाख संपत्ति वाले मंत्री भी आम लोगों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। अत: विविधताओं से भरा यह देश सुधार और समानता की उम्मीद बनाए रखेगा।